एक नया सवेरा

विशेष संवाददाता

एक बार एक विदेशी भारत घूमने आया। राजस्थान में घूमते हुए उसने चारों तरफ देखा, रंग-बिरंगे घाघरे, रेशमी गलीचे, रैगरी जूतियां, बावड़ी, नाले। इन्हें देखकर वह अपने गाईड से बोला, 'इसे रेगिस्तान कहते हो।' सूरज सर पर चढ़ आया। गर्मी बढ़ गई। विदेशी ने सोचा, कहीं आराम करना चाहिए। पर रेगिस्तान में कोई पेड़ या छायादार जगह कहां, बस चारों तरफ रेत ही रेत। गाईड बोला 'साहिब, यही रेगिस्तान है'।

सुनने में तो यह केवल कहानी है। पर बात कितनी सच है। जहां रेगिस्तान में एक ओर तकलीफें हैं, वहीं दूसरी ओर इन तकलीफों से जूझने के साधन। यहां पर रहने वाले समुदायों ने यहां के कठिन हालातों में जीने की कला सीख ली है।

हालात बदलने लगे

विकास ने जैसे ही यहां अपने पांव टिकाने शुरू किए, यहां की सदियों से चली आ रही पारंपरिक कलाओं ने दम तोड़ना शुरू कर दिया। लोगों ने पशु-पालन छोड़कर खेतीबाड़ी करना शुरू कर दिया। हाथ से बुने कपड़ों की जगह बाहर के रेशमी और ऊनी मशीन से बने कपड़े पहनने शुरू कर दिए। जूतियां छोड़कर रबड़ के जूते-चप्पल आ गए। ठीक उसी तरह जैसे घरों में मटकों की जगह फिल्टर आ गए।

इन सब का असर पड़ा यहां के लोगों के रोज़गार पर। जो लोग अभी तक हस्तकलाओं के माध्यम से अपना पेट-पालते थे, अब इस काम से महरूम हो गए। और कोई जगह होती तो लोग कोई दूसरा काम ढूंढ पाते। पर यह तो रेगिस्तान है।

उरमूल ने राह दिखाई

लोगों की इन परेशानियों में उनकी मदद की उरमूल नाम की एक संस्था ने। उरमूल का पूरा नाम है 'उरमूल रूरल हैल्थ रिसर्च एण्ड डेवलपमेंट ट्रस्ट।' इसकी स्थापना 1984 में उत्तरी राजस्थान दुग्ध यूनियन लिमिटेड की एक शाखा के रूप में हुई थी। यह यूनियन किसानों का डेरी कोओपरेटिव था। इस ट्रस्ट का काम इसके संगठनों की मदद से छः सौ कार्यकर्त्ता संभालते हैं। इन कार्यकर्त्ताओं में औरतें और मर्द दोनों शामिल हैं। कार्यकर्त्ता मुख्य रूप से मेघवाल और नावक समुदाय के हैं, जो कि इस इलाके की सबसे गरीब और छोटी जातियां हैं।

फलोदी के बुनकर

उरमूल की छत्रछाया में काम करने वाला सबसे

मुख्य समूह है फलोदी के बुनकर। उरमूल में काम करने वाले समूहों में यह सबसे ज्यादा पुराने और पारंगत हैं। दलालों और बड़े व्यापारियों के शोषण से तंग आकर 1987 में कुछ लोग बीकानेर की लूणकरनसर तहसील में आकर बस गए। इन कारीगरों ने यहां के स्थानीय बुनकरों को अपनी यह कला सिखानी शुरू कर दी। बड़े पैमाने पर मिलजुल कर काम करने, प्रशिक्षण और नए-नए डिज़ाइनों को विकसित करके यह छोटा सा समूह एक बड़ा और सफल समूह बन गया।

1991 में उरमूल की मदद से इस समूह ने अपने आप को रजिस्टर कराया। जोधपुर जिले के फलोदी शहर में उनका हैड क्वार्टर बन गया। इस समूह की आमदनी साल भर में करीब पच्चीस लाख रुपये है। इसमें पच्चीस प्रतिशत फायदा है। उनकी आमदनी का पचास प्रतिशत बाहर देशों में माल भेजकर कमाया जाता है।

ये बुनकर कशीदाकारी से ज्यादातर सामान तैयार करते हैं। जैसे कि पारंपरिक पट्टू यानि गलीचे, शॉल, गद्दियों के कवर, लंहगे, चुनरी आदि बनाते हैं। यह हाथ के करघे का उपयोग करते हैं। इसके बावजूद भी करीब दो सौ कारीगर जैसलमेर और जोधपुर के गांवों में इस काम में जुटे हैं। इस काम से होने वाले मुनाफे का कुछ हिस्सा उरमूल कार्यकर्त्ताओं के बच्चों की शिक्षा पर खर्च किया जाता है।

औरतों के लिए

उरमूल ने औरतों को अपने पैरों पर खड़े होने में भी बहुत मदद की। बज्जू गांव में औरतें बड़ी तकलीफों में दिन गुज़ार रही थीं। इस इलाके में बिजली, पानी, स्वास्थ्य सुविधाएं, पढ़ाई आदि किसी भी चीज की सहूलियत नहीं थी। यहां पर रहने वाले लोग 1971 में पाकिस्तान की लड़ाई के समय बस गए शरणार्थी हैं। ये औरतें परंपरागत कश्मीरी कढ़ाई में निपुण हैं। अपनी कला को जीवित रखने के लिए इन्होंने उरमूल से मदद ली। आज ये औरतें कढ़ाई के घाघरे, गिलाफ, गद्दियों के कवर, बैग, दुपट्टे और दूसरी चीज़ें बनाती हैं।

लूणकरनसर के पीढ़े

इसी तरह उरमूल ने लूणकरनसर में औरतों को 'पीढ़े' बनाने के काम को बतौर रोजगार विकसित करने की सलाह दी। इन 'पीढ़ों' को बनाने के लिए बकरी और ऊंट के बालों का प्रयोग होता है। इन बालों को पक्के रंगों में रंगकर इसकी सुंदर कारीगरी से साज-सजावट करके 'पीढ़े' बनाए जाते हैं। इस पूरी प्रक्रिया में करीब पंद्रह औरतें लगती हैं।

इस काम की सभी प्रक्रियाएं औरतें खुद अपने आप करती हैं। चाहे वह रंगाई, बुनाई या लकड़ी के फ्रेम में बंधाई का काम हो। इस काम से हरेक औरत को पांच सौ रुपये माहवार की आमदनी होती है। हर पीढ़े पर दस रुपये का टैक्स लगता है, जिससे इकट्ठी की गई रकम उरमूल को दी जाती है। इन पैसों से उरमूल समूह की औरतों के लिए प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम चलाती है।

किसणासर की दरियां

उरमूल ने आजकल एक नई स्कीम शुरू की है। किसणासर में पांच औरतों ने दरियां बनाने का काम शुरू किया है। दरियों को बनाने के लिए वे तारा लूम का इस्तेमाल करती हैं। इन दरियों में वे खूबसूरत रंगों में चैक और धारीदार डिज़ाइन बनाती हैं। इन पांच औरतों ने आसपास के गांवों की पच्चीस औरतों को भी यह काम सिखाना शुरू कर

दिया है। ये औरतें महीने में करीब तीन हजार मीटर कपड़ा बुन लेती हैं। इस बुनाई से उन्हें काफी आमदनी हो जाती है। अच्छा काम चलता है तो मजदूरी पचहत्तर रुपए रोज तक पहुंच जाती है।

जीवनदान

उरमूल की इन योजनाओं से कई लुप्त होती कलाओं को फिर से जीवनदान मिल गया है। आसपास के गांवों में काफी लोग दरी बुनने, पीढ़े बनाने, कपड़ा बुनने आदि का काम सीखने के लिए आगे आ रहे हैं। यह इसलिए कि इससे उनकी आमदनी बढ़ती है। साथ ही यह काम सीखकर वे अपने पैरों पर खड़े होकर अपनी जिंदगी संवार सकते हैं। उन्हें काम मांगने के लिए दर-दर भटकना भी नहीं पड़ेगा। □

उरमूल ट्रस्ट का पता — पोस्ट-बाक्स-55, बीकानेर (राजस्थान)।